बुधवार, 9 नवंबर 2016

लोकमत समाचार

भारत की पहचान हिमालय और सागर के आधार पर की जाती रही.

राष्ट्रीयता केवल भावना का प्रश्न नहीं

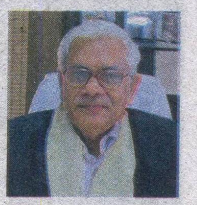

गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
misragirishwar@gmail.com

राष्ट्रीयता मूल रूप से पहचान की भी चुनौती है. साथ ही यह 'अपने' और 'पराए' के भेद से भी जुड़ी है. हमारी अपनी विशिष्टताएं दूसरों से अलग करती हैं. समूह की समृद्धि, आकार और उपसमूहों की संख्या भी इस भेद को निर्धारित करती है.

राजनीतिक हलकों में राष्ट्रीयता के सवाल को लेकर कई तरह के प्रश्न उठाए जा रहे हैं और भिन्न-भिन्न व्याख्याएं भी दी जा रही हैं. राष्ट्रीयता केवल भावना का प्रश्न नहीं है. उसके बौद्धिक और व्यावहारिक पक्ष भी हैं जिन पर पूर्वाग्रहमुक्त होकर बुद्धिसंगत विचार की अपेक्षा है. चूंकि राष्ट्र के साथ भावनाओं और राजनीतिक उपयोगों का दबाव बहुत ज्यादा होता है इसलिए उसे लेकर कुंठा और क्षोभ भी पैदा होते हैं. इसके अनेक उदाहरण स्वायत्तता की मांग करने वाले क्षेत्रीय आंदोलनों के रुप में हमारे सामने हैं. राष्ट्र की अखंडता की रक्षा और क्षेत्रीय स्वायत्तता के आग्रह के बीच द्वंद्व तनाव, आंदोलन और हिंसा के रुप में उभरते रहे हैं. देश में अनेक प्रांतों का गठन इसी तरह के संघर्षों के रास्ते हुआ है. अपने समुदाय के प्रति लगाव एक आदिम प्रवृत्ति है जो कदाचित आनुवंशिक सी लगती है अर्थात उससे मुक्ति संभव नहीं है. आज भी समूह के लगाव और उसकी उपलिब्ध को सार्वभौमिक रुप से उत्सवपूर्वक उल्लास के साथ मनाया जाता है और क्षेत्रीयता की यह आदिम रुझान कभी-कभी उन्माद के स्तर तक पहुंच जाती है.

राष्ट्रीयता मूल रुप से पहचान की भी चुनौती है. साथ ही यह 'अपने' और 'पराए' के भेद से भी जुड़ी है. हमारी अपनी विशिष्टताएं दूसरों से अलग करती हैं. समूह की समृद्धि, आकार और उपसमूहों की संख्या भी इस भेद को निर्धारित करती है. परिवेश के साथ अनुकूलन और बाह्य संपर्क का स्वरुप भी पहचान को प्रभावित करते हैं. इसी तरह जब किसी बड़े समाज के कुछ भाग अन्य भागों से संवाद नहीं कर पाते हैं तो भाषा, मूल, धर्म आदि के आधार पर छोटे आकार के स्वतंत्र समूहों का निर्माण होने लगता है. इस तरह से उपजे अज्ञान और संप्रेषण के अभाव से भावनात्मक टूट पैदा होती है और अलग-अलग राष्ट्रीयताएं उभरने लगती हैं. अपने समूह के प्रति लगाव बिलकुल स्थिर भी नहीं रहता. बाहरी आक्रमण का भय अक्सर

लगाव या वफादारी का दायरा बढ़ा घटा देता है. अपने पराए की श्रेणियां भी स्थायी नहीं होतीं. जब समूह उन्नति की दिशा में आगे बढ़ता है तो अधिकाधिक लोगों को अपने में शामिल करता चलता है परंतु पराभव की स्थिति में संकुचन की प्रवृत्ति प्रबल होने लगती है. भिन्न-भिन्न समूहों की अस्मिताएं इसलिए भी टकराने लगती हैं कि एक की विशेषता दूसरे द्वारा अपने लिए खतरे के रुप में देखी जाने लगती है.

राष्ट्रीयता के बोध हेतु परंपरा, भाषा, इतिहास, प्रथाएं, रीति-रिवाज, अनुष्ठान आदि में साझेदारी और समानता अपेक्षित होती है. वर्तमान में जो प्रचलन है उसके मुताबिक राष्ट्र वस्तुतः राष्ट्र राज्य (नेशन स्टेट) तक ही सीमित है जिसका अपने निर्धारित क्षेत्र में असीमित अधिकार और सार्वभौम सत्ता स्वीकार्य होती है.

भारत की पहचान हिमालय और सागर के आधार पर की जाती रही. गंगा, गोदावरी, कावेरी, शिप्रा, मंदाकिनी, सरयू जैसी नदियां पुण्यदायी मानी गईं. जगन्नाथपुरी, द्वारिका, काशी, कांची, उज्जैन, मथुरा और अयोध्या नगरियों को मोक्षदायिनी माना गया. विचारों और आंदोलनों की दृष्टि से पूरा भारत दृष्टि में रहा. सुदूर दक्षिण के शंकराचार्य ने अपने केंद्र शृंगेरी, पुरी, द्वारिका और बद्रीनाथ में स्थापित किए. आज भी बद्रिकाश्रम की पूजा-अर्चना एक नंबूदरी पुजारी ही करता है. बाद में भक्ति की धारा पूरे देश में प्रवाहित हुई और अपूर्व काव्य-रचनाएं प्रकाश में आईं. कला के क्षेत्र में समूचे भारत में कुछ प्रवृत्तियां दिखती हैं. ओडिशा में उदयगिरि और कोणार्क, महाराष्ट्र में अजंता और एलोरा तथा तमिलनाडु के महाबलीपुरम और तंजावुर का बृहदीश्वर मंदिर, मदुरे और खजुराहो के मंदिर आदि भिन्न स्थानों पर पहुंच कर यही लगता है कि भारत की एक छाप इन सब जगहों पर है . सामवेद से आरंभ हुई शास्त्रीय संगीत की धारा विविध रुपों में पुष्पित और पल्लवित हुई. विभिन्न भाषाओं के साहित्य में भी भारतीयता की छ विद्यमान है. यदि प्राचीन मतों बात करें तो उनमें बड़े गंभीर भेद द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत, वैष्णव, शाव शैव, जैन, बौद्ध आदि मत हैं अ प्रत्येक के उपभेद भी हैं जिन जटिल व्यवस्था है.

शास्त्रीय ज्ञान की परंपराओं मतभेद और शास्त्रार्थ की ल परम्परा है पर इनको मानने वाले स अपने को भारतीय ही कहते हैं. दू ओर लोकजीवन की भी विवि परंपराएं रही हैं और अभी भी जीवि हैं. कबीर, सूर, तुलसी, रैदास, रही रसखान जिनके बिना हिंदी क कल्पना नहीं की जा सकती अल अलग धाराएं प्रवाहित कर रहे थे अ राष्ट्रीयता ऐसी थी कि सभी समावि थे. कह सकते हैं वह विकेंद्रित थ ईसा पूर्व छठी शताब्दी में राजत और गणतंत्र वाले सोलह जनपदों उल्लेख मिलता है. पर ये यूरोप मॉडल वाले राष्ट्र राज्य की तर्ज बिलकुल नहीं थे. हमारी राष्ट्रीय की अवधारणा आक्रमक अ असहिष्णु नहीं थी.

इसका प्रमाण है शक, हूण कोल, किरात सबको उनकी मूल भाषा और जीवनशैली की भिन्न के बावजूद अवसर देना. भारतीय की उपस्थिति निश्चय ही यहां जीवन मूल्यों में है जिसकी आधुनि परिणति गांधीजी में मिलती है. सत और अहिंसा को जीवन-धर्म बना और सकल सृष्टि के साथ निकट ही हमारी और मनुष्य मात्र व पहचान होनी चाहिए क्योंकि पृथ्व माता है और हम उसकी संतान देश के साथ मातृवत संबंध हो चाहिए.